क्या जानवर व्यक्ति होते हैं?

डी. बालसुब्रमण्यम

यह एक समीक्षा की समीक्षा है। पेशे से वकील और अदालत में जानवरों की वकालत करने के विशेषज्ञ श्री स्टीवन एम वाईज़ ने *रैटलिंग द केज : टुवर्ड्स लीगल राईट्स फॉर एनीमल्स* नामक एक किताब लिखी है। हालांकि यह किताब मुझे अभी पढ़ना बाकी है लेकिन 17 अगस्त, 2000 को *नेचर* पत्रिका के एक अंक में प्रकाशित हुई श्री केनन मलिक की इस किताब पर लिखी समीक्षा पढ़ने को मिली। इस समीक्षा में जानवरों के 'कानूनी अधिकारों' जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा की गई है। इस संदर्भ में हमारे देश में चल रहे विवाद में कुछ स्पष्टता लाने के लिए इस समीक्षा में उठाए गए कुछ बिन्दुओं पर विचार करना प्रासंगिक होगा।

अपनी इस किताब में चिम्पैंज़ियों और बोनोबो बन्दरों के साथ महज़ 'वस्तुओं' की तरह नहीं, बल्कि 'मनुष्यों' की तरह व्यवहार करने के बारे में वाईज़ एक कानूनी बहस छेड़ते हैं ताकि अधिकारों के सम्भावित हकदार के रूप में उन पर विचार किया जा सके। उनका मानना है कि ऐसा करते समय हम 'राष्ट्रों के कानून' की बजाय 'प्रकृति के नियमों' का अनुसरण कर रहे होंगे। 'राष्ट्रों के कानून' मानव निर्मित होने से देश काल के संदर्भ में बदल भी सकते हैं। जबकि 'प्रकृति का नियम' सार्वभौमिक है। वह वस्तुओं के स्वभाव में निहित है और कोई एक प्रजाति उसे थोड़े समय के लिए या मनमाने ढंग से बदल नहीं सकती। वाईज़ के अनुसार जानवरों को कानूनी अधिकार नहीं देते समय (जैसे हम मनुष्यों को देते हैं) हम प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर रहे होते हैं। इसलिए जानवरों के अधिकारों को नकारना नस्लवाद व दास प्रथा के बतौर लिया जाएगा जो प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध जाने पर भी एक समय में मानव कानून में स्वीकार्य थे। दूसरे शब्दों में वे पूछते हैं कि ''क्या वस्तुएं या प्राणी या विचार इसलिए मूल्यवान होते हैं क्योंकि हम उन्हें मूल्यवान समझते हैं या वे स्वाभाविक रूप से मूल्यवान होते हैं।''

बन्दरों में बोध

ये वे तर्क हैं जिन्हें केनन मलिक अपनी समीक्षा में गलत सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। वे कहते हैं कि दास प्रथा व नस्लवाद को निकाल बाहर फेंका गया क्योंकि वे मानवीय नैतिकी सम्बंधी विचारों के विरोधी थे। दास प्रथा व नस्लवाद इस विचार के चलते व्यवहार में लाए जा सके कि कुछ लोग दूसरे मनुष्यों से स्वाभाविक रूप से अधिक मूल्यवान या बेहतर होते हैं। इस तरह का विचार केवल राजनैतिक असमानता के अपराध में प्रकृति को अपना संगी बनाने का एक प्रयास था। मलिक यह नहीं सुझा रहे हैं कि दास प्रथा या नस्लवाद प्रकृति के नियम

अधिकार पाने का अर्थ यही है कि अपने व्यवहार की ज़िम्मेदारी भी ओढ़ लेना ताकि हम नैतिक प्राणी की तरह पहचाने जा सकें। अधिकार दिया जाना और अपने कार्यों के लिए जवाबदेह न ठहराया जाना कैसे स्वीकार्य हो सकता है? इसी तरह अधिकार न मिलना और अपने कार्यों के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जाना भी कैसे स्वीकार्य हो सकता है?

केनन मलिक का कहना है कि ''हम तो सही और गलत में भेद कर सकते हैं, ज़िम्मेदारी ले सकते हैं, अपने पर लगे आरोप का बंटवारा कर सकते हैं, लेकिन बच्चे और बन्दर ऐसा नहीं कर सकते और इसीलिए वे अधकारों के हकदार नहीं बन सकते। सच तो यह है कि बच्चों को अधिकार नहीं सुरक्षा दी जाती है। अधिकार का होना हमसे अपने फैसले खुद करने की मांग करता है। जबकि सुरक्षा की यह मांग होती है कि हम दूसरों के एवज़ में फैसले लें। निश्चय ही मत देने के अधिकार जैसे कई अधिकार बच्चों को इसलिए नहीं दिए गए हैं क्योंकि वे तार्किक निर्णय नहीं ले सकते।''

में स्वीकार्य हैं। तर्क सिर्फ यह है कि ये दोनों असमताएं स्वयं मानवीय कानून के खिलाफ ही पाई गईं। वाईज़, चिम्पैंज़ियों और बोनोबो के 'अन्तर्निहित मूल्य' और तदोपरांत उनके 'वैधानिक व्यक्तित्व' का मसला उठाते हैं। उनकी यह दलील उन वैज्ञानिक साक्ष्यों पर आधारित है कि वे (चिम्पैंजी व बोनोबो बन्दर) भी बुद्धि रखते हैं, दूसरों के मन को पढ़ सकते हैं, संज्ञानात्मक (पहचानने की) योग्यताएं रखते हैं, उनमें बोध व आत्मबोध होता है और वे भी भाषा का प्रयोग करते हैं।

यह तर्क मनुष्यों से साम्य पर आधारित है। जो कम से कम यह तो स्वीकारेगा कि महावानर वही मस्तिष्क रखते हैं जो इंसानी बच्चों में होता है। अपनी इस समीक्षा में मलिक दार्शनिक विटगेंस्टाईन के सहारे इसी तर्क पद्धति का विरोध करते हैं। उन्हें शब्दशः उद्धृत करना बेहतर होगा - *''मानवीय मस्तिष्क पूरी तरह निजी नहीं हो सकते क्योंकि अगर ऐसा हो तो हम अपने मन की बातों को किसी और तक नहीं पहुंचा सकते। मेरी अंदरूनी भावनाएं कम से कम कुछ मामलों में तो मेरे लिए भी उतना ही मायने रखती हैं जितनी कि औरों के लिए। मैं खुद अपना अर्थ उसी हद तक समझ सकता हूं जिस हद तक मैं विचारवान, संवेदनशील और बोलने में सक्षम मनुष्यों के बीच रहूं और उनसे कोई रिश्ता बनाऊं। अपने अनुभवों के सहारे दूसरे मनुष्यों के अनुभवों को जानने की जगह हम दूसरे मनुष्यों को बताकर ही यह जान सकते हैं कि खुद हमारे भीतर क्या चल रहा है। हम अपने अन्दरूनी विचारों और अनुभूतियों का अर्थ इसलिए लगा पाते हैं क्योंकि हम मात्र व्यक्ति की तरह नहीं जीते बल्कि एक सामाजिक समुदाय के भीतर जीते हैं। और यही नहीं, एक ऐसे सामाजिक समुदाय के बीच जो भाषा से बंधा हुआ है। किसी भी जानवर के पास हमारी तरह भाषाई या सामाजिक बुनावट नहीं है, इसलिए यह अनुमान लगाना निराधार है कि उनमें हमारी तरह आन्तरिक अनुभव होते होंगे।''*

''अगर हम यह मान भी लें कि बन्दरों के पास किसी तरह का मस्तिष्क होता है, जैसा कि वाईज़ का अनुमान है कि वे सचेतन और प्रयोजनधर्मी प्राणी हैं जिनमें तीन बरस के बच्चे जितना संज्ञान होता है। तो क्या इस आधार पर उन्हें अधिकार दे दिए जाने चाहिए? वाईज़ का विचार है कि हमें उन्हें अधिकार दे देना चाहिए, उसी तरह जिस तरह हम तीन बरस के बच्चे को देते हैं, क्योंकि वे बन्दर तीन बरस के बच्चों के समान हैं।''

अधिकार व ज़िम्मेदारी साथ-साथ

तो जानवरों के अधिकारों की बात करें। यदि हम वाईज़ से सहमत हो जाएं तो बन्दरों के अधिकार बाल अधिकारों के पासंग तो ठहरेंगे ही। लेकिन मुद्दे की बात यह है कि अधिकारों का हाथ थामे कर्त्तव्य भी चले आते हैं। अधिकार पाने का अर्थ यही है कि अपने व्यवहार की ज़िम्मेदारी भी ओढ़ लेना ताकि हम नैतिक प्राणी की तरह पहचाने जा सकें। अधिकार दिया जाना और अपने कार्यों के लिए जवाबदेह न ठहराया जाना कैसे स्वीकार्य हो सकता है? इसी तरह अधिकार न मिलना और अपने कार्यों के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जाना भी कैसे स्वीकार्य हो सकता है? इसीलिए तानाशाही, निरंकुशवाद, दास प्रथा, नस्लवाद के साथ-साथ जानवरों से क्रूर व्यवहार करना भी नैतिक दृष्टि से निन्दनीय है। यहां मलिक एक बार फिर एक ज़ोरदार बात कहते हैं-

''हम तो सही और गलत में भेद कर सकते हैं, ज़िम्मेदारी ले सकते हैं, अपने पर लगे आरोप का विनियोजन कर सकते हैं, लेकिन बच्चे और बन्दर ऐसा नहीं कर सकते और इसीलिए वे अधिकारी नहीं बन

शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओं की स्व-नियमन प्रकृति को सबसे पहले फ्रांसिसी शरीरक्रिया वैज्ञानिक क्लॉड बर्नार्ड ने जाना। इस चित्र में खरगोश पर बिजली के झटकों की प्रतिक्रिया देखी जा रही है। जीवों पर किए प्रयोगों के ज़रिए बर्नार्ड द्वारा पाए तथ्यों ने आधुनिक शरीर क्रिया विज्ञान की नींव रखी।

सकते। सच तो यह है कि बच्चों को अधिकार नहीं सुरक्षा दी जाती है। अधिकार का होना हमसे अपने फैसले खुद करने की मांग करता है। जबकि सुरक्षा की यह मांग होती है कि हम दूसरों के एवज़ में फैसले लें। निश्चय ही मत देने के अधिकार जैसे कई अधिकार बच्चों को इसलिए नहीं दिए गए हैं क्योंकि वे तार्किक निर्णय नहीं ले सकते।''

बच्चे वानर नहीं

''कानून बच्चों और तार्किक व स्वायत्त न रह सकने वाले मानसिक रूप से अक्षम लोगों को तो सुरक्षा देता है पर बन्दरों को क्यों नहीं? ऐसा इसलिए कि आम तौर पर बच्चे बड़े होकर नैतिक समुदाय के सम्पूर्ण सदस्य बन जाते हैं। दरअसल हम उन्हें सम्भावित नैतिक प्रतिनिधि मानते हैं इसीलिए वे बड़े होकर वैसे ही हो जाते हैं। जहां तक मानसिक रूप से विकलांग लोगों की बात है, उन्हें हम संरक्षण इसलिए देते हैं क्योंकि उनमें कभी नैतिक प्राणी हो सकने की सम्भावना थी। बच्चे और मानसिक रूप से विकलांग लोग वयस्क और स्वायत्त मनुष्यों की तरह ही हैं जिसका सामान्य उदाहरण नैतिक प्राणी हैं। बन्दर इस तरह के प्राणी नहीं हैं।''

वाईज़ का यह कहना ठीक है कि *''कानून में अधिकार सम्पन्न 'व्यक्तियों' और बिना अधिकारों के 'अव्यक्तियों' (वस्तुओं) का अन्तर साफ-साफ है। लेकिन इस अन्तर को मिटाने की उनकी इच्छा नैतिक प्राणी और नैतिकता के प्रति अबोध प्राणियों की कोटियों को गड्ड-मड्ड कर देती है। बहुत सारे जानवरों की तरह बन्दर भी व्यक्ति हैं। हर बन्दर में एक खास व्यक्तित्व है। लेकिन मनुष्य बिल्कुल ही अलग अर्थों में विशिष्ट व्यक्ति है; हम अपने हाथों गढ़े गए प्राणी हैं, जो स्वयं को ऐसे ही अन्य प्राणियों से अपने सम्बंधों के सहारे पहचानते हैं। यही वह चीज़ है जिसे हम व्यक्तित्व का मर्म कह रहे हैं, इसीलिए जानवर विशिष्ट तो हो सकते हैं लेकिन इससे वे व्यक्ति नहीं बन जाते।''*

कल्याण ज़रूर, पर अधिकार नहीं

जानवरों के अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे समूहों ने दुनिया भर में ऐसे वैज्ञानिक प्रयोगों के खिलाफ आवाज़ उठाई है जिनमें प्रयोगशालाओं में जानवरों का उपयोग होता है। जानवरों के प्रति उनका यह सरोकार समझ में आने वाला ही नहीं बल्कि प्रशंसनीय भी है लेकिन इस हेतु उनके द्वारा अपनाया गया ढंग उचित नहीं। इनमें से कइयों की जानवरों के बारे में रूमानी धारणा है और कुछ को तो यह पूरा विश्वास है कि जानवरों पर प्रयोग निर्मम, पीड़ादायक और क्रूर होते हैं। इस सम्बंध में महात्मा गांधी का तर्क एक अतिशयोक्ति है - *''अगर रक्तप्रवाह का सिद्धान्त पशुहत्या के बगैर खोजा नहीं जा सकता तो मनुष्य उसके बगैर भी रह सकता था।''* (यह सिद्धान्त जानवरों की जगह मनुष्यों की चीरफाड़ से भी खोजा जा सकता था, लेकिन ऐसा करना न सिर्फ अव्यावहारिक होता बल्कि कइयों की नज़र में अनैतिक भी होता। शायद यही सोचकर हार्वे को अपनी धारणा साबित करने हेतु जानवरों पर प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ी होगी। गौरतलब है कि विलियम हार्वे ने रक्तसंचार के बारे में पहले-पहल खोज की थी।) मनुष्यों पर प्रयोग करना, जैसा दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान नात्ज़ी वैज्ञानिकों ने किया था, हर जगह घोर अनैतिक माना जाता है।

जानवरों के हकों की मांग करने वाले इन सक्रिय लोगों को अधिकारों की बजाए उनके कल्याण और उनके प्रति मानवीय व्यवहार की मांग करना चाहिए और

इस एण्टीबयोटिक को पहले कुत्तों, चूहों और खरगोशों पर जांचा गया। इससे पता चला कि दवा शरीर द्वारा सोखी जा रही है, त्यागी जा रही है और जानवर द्वारा अच्छी तरह से सही जा रही है।

भावी पीढ़ियों पर दवा का परिणाम देखने के लिए गर्भवती चूहों को एण्टीबायोटिक का टीका लगाया गया। जांच के दौरान चूहे के बच्चों में कोई अनपेक्षित परिणाम न दिखे। दवा की घातक मात्रा भी तय पाई गई।

वयस्कों, गर्भवती महिलाओं और बच्चों को दवा की खुराक दी गई। वह आसानी से शरीर द्वारा सोख ली गई, त्यागी गई और सही गई। यानी जीवों पर दिखे नतीजों की पुष्टि हो गई।

बच्चों और वयस्कों को दवा की विभिन्न मात्रा दी गई और इस तरह उचित खुराक तय की गई।

अन्य एण्टीबायोटिक से इस दवा की तुलना की गई।

तमाम आंकड़ों को कम्प्यूटर में डालकर दवा के अनुमोदन हेतु खाद्य और दवा नियमन को भेजा गया।

जानवरों पर अनर्गल क्रूरता का कड़ाई से विरोध करना चाहिए। यह सच है कि कुछ जीवों, खास तौर पर पालतू जानवरों को अधिकार मिले हुए हैं लेकिन उन्हें ज़िम्मेदारियां भी पूरी-पूरी निभानी पड़ती हैं जैसे घुसपैठ पर नज़र रखना, विकलांगों की देखभाल करना, कानून की मदद करना, बचाव दल के साथ काम करना आदि। हाथियों ने राजदरबारों में, युद्ध, वानिकी और मन्दिरों में विशिष्ट भूमिकाएं और जिम्मेदारियां निभाई हैं इसीलिए उनके पास अधिकार हैं। यही स्थिति सेनाओं में घोड़ों और ऊंटों की है और इसी तरह खेती में इस्तेमाल होने वाले जानवर हैं। इसलिए यह पढ़ना आश्चर्यजनक नहीं कि सेना के हाथियों या पुलिस के कुत्तों को उनकी सेवाओं के बाद सेवानिवृत्ति के फायदे दिए गए हैं। इन खास स्थितियों और उदाहरणों को छोड़, यहां मुद्दा समस्त जानवरों के जीवन व स्वास्थ्य के प्रति सम्मान और उनके समग्र कल्याण का है।

प्रयोगों में जानवरों के इस्तेमाल की ज़रूरत

वैज्ञानिकों और चिकित्साशास्त्रियों को अक्सर प्रयोगशाला में जन्मे जानवरों पर प्रयोग करने पड़ते हैं। उन्हें इस आधार पर जीव हत्यारा या क्रूर कहना गलत है क्योंकि वे बिल्कुल ज़रूरी होने पर ही जानवरों का इस्तेमाल करते हैं। विज्ञान अब इस हद तक विकसित हो चुका है कि विशिष्ट जैविक कोशिकाओं को अलगाया जा सके, उन्हें प्रयोगशाला में कल्चर (संवर्धित) किया जा सके और इन कोशिकाओं को वैज्ञानिक प्रयोगों में इस्तेमाल किया जा सके। लेकिन स्थितियां ऐसी भी हो सकती हैं जहां एक ऊतक की प्रतिक्रिया अपनी उन संघटक कोशिकाओं से बिल्कुल अलग हो जिन्हें प्रयोगशाला में उगाया गया है। इन स्थितियों में ऊतकों को प्रयोगशाला में संवर्धित कर उनका इस्तेमाल किया जाता है। कई बार विभिन्न कोशिकाओं और ऊतकों से बने किसी अंग की प्रतिक्रिया का अलग से अध्ययन करना पड़ सकता है। ऐसी स्थिति में जहां सम्भव हो वहां अंग को प्रयोगशाला में संवर्धित करने की शरण में जाया जाता है। लेकिन जब परस्पर प्रतिक्रियारत विभिन्न अंगों वाले पूरे प्राणी की प्रतिक्रिया का अध्ययन करने की आवश्यकता होती है, केवल तभी जीवित जानवरों का उपयोग किया जाता है।

वैज्ञानिक समुदायों में जानवरों पर प्रयोग करने की विधियों को संचालित करने वाले कठोर, स्वनिर्मित कायदे हैं। जानवरों पर प्रयोग करते हुए अधिकांशतः तीन कायदों पर अमल किया जाता है -विस्थापन (जहां तक हो सके जानवरों की जगह अंगों, ऊतकों व कोशिकाओं का उपयोग), परिष्कार (जानवरों से व्यवहार और विश्लेषण के अधिक विकसित यंत्रों के ज़रिए) और कटौती (प्रयोगों के लिए जानवरों की संख्या में कटौती)।

जानवरों के अधिकारों के लिए संघर्षरत लोगों को यह समझना चाहिए कि जब कोशिकाओं, ऊतकों व अंगों से काम नहीं चलता तभी प्रयोगकर्ताओं को आखिरी उपाय के रूप में जानवरों का उपयोग करना पड़ता है। ऐसा इसलिए कि पूरे प्राणी की प्रतिक्रिया के अध्ययन के लिए ऐसे उपयोग ज़रूरी हो जाते हैं। कायदों और दिशानिर्देशों की निश्चय ही आवश्यकता है लेकिन उनका आधार रूमानियत न होकर तर्कसंगत होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब हम अपनी आंखें खुली रखेंगे और औरों की नीयत पर बिलावजह शक करना बन्द कर देंगे।

(स्रोत फीचर्स)